



अगर हमारा गुरु के प्रति समर्पण है तो नित्य गुरु का ध्यान करके कर्म करें और जब कभी गलत कर्म करने की भावना जागृत हो तो सोचें कि अगर मैं ये कर्म करता हूँ तो क्या वे गुरु प्रसन्न होंगे ?

प्रिय आत्मन् ! सप्रेम जय गुरुदेव! सिद्ध मार्ग ई-पत्रिका का इक्कीसवाँ अंक प्रस्तुत है । इस अंक में महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा कुछ समय पूर्व शान्ति मन्दिर मगोद में दिये गये प्रवचन के सम्पादित अंश प्रस्तुत हैं ।

श्रीगुरुदेव

ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति - अर्थात् गाँव जाते हुए रास्ते में आये हुए तिनकों, पौधों को भी छूता चला जा रहा है । मनुष्य कुछ न कुछ कर्म हमेशा करता ही रहता है जैसा कि गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- नियतं कुरु कर्मत्वम् । हमको विचार करना कि मैं ऐसे कर्म करूँ जिससे किसी दूसरे को हानि न हो । कहते हैं कि अगर हमारा गुरु के प्रति समर्पण है तो नित्य गुरु का ध्यान करके कर्म करें और जब कभी गलत कर्म करने की भावना जागृत हो तो सोचें कि अगर मैं ये कर्म करता हूँ तो क्या वे गुरु प्रसन्न होंगे ? जिस गुरु का स्मरण किया वह गुरु कहीं बाहर नहीं वो तो हमारे साथ हमारे हृदय में निवास करता

जब दीर्घदण्डं
नमस्कृत्य की इस
भावना से हम गुरु
को अर्पित हो जाते हैं
तब हमारी सद्गति
होती है ।

है । इस भावना से किए गये कर्म ही हमें बुरे कर्मों से बचा सकेंगे । हम कहें नहीं उसे कि मैं आपका स्मरण कर रहा हूँ । जब हम कोई कर्म करें तो बस यही विचार करें कि ये कर्म मैं नहीं कर रहा हूँ जो भी कर रहा है वो गुरु है जो हमारे माध्यम से कर्म कर रहा है । इसके लिए उदाहरण दिया जाता है बाँसुरी का, है बाँस का टुकड़ा लेकिन बजाने वाला जिस तरीके से बजाता है बाँसुरी उसी तरह बजती है तो शिष्य हो तो कैसा, बाँसुरी जैसा । मुझे क्या लेना देना जैसे वो फूँक रहे हैं जैसे उंगलियाँ घुमा रहे हैं वैसे ही मुझे बजना है । जब दीर्घदण्डं नमस्कृत्य की इस भावना से हम गुरु को अर्पित हो जाते हैं तब हमारी सद्गति होती है । हम मन्दिर में प्रणाम क्यों करते हैं ? उसका भी एक भाव है, एक कल्पना है, जिसका तात्पर्य है कि मेरा जो अहं है , अहंकार है वो मिट जाये । सद्गुरु

हमें सद्बुद्धि देवें जिससे हम अपने जीवन को सार्थक बना सकें और इस गुरुकृपा सागर में सम्मिलित हो जाएँ । जब हमारे कर्म इस भावना से होने लगेंगे तब हम कह सकते हैं कि हमने गुरु को अपनाया है । जब तक हम स्वयं में और गुरु में भेद करेंगे तब तक ये सब कहने के लिए होगा जिसकी कोई सार्थकता सिद्ध नहीं होगी अर्थात् आडम्बर की प्रतिक्रिया होती रहेगी और हम सिर्फ दिखावे के लिए ध्यान भजन करते रहेंगे । जैसे हम अपने शरीर के लिए सब कुछ करते हैं और लगन से करते हैं, ठीक उसी प्रकार से गुरु सेवा में भी संलग्न होंगे तभी हमारी आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है । बाबाजी के आश्रम में कोई सेवा करने आता था तो उसको सेवा में गोशाला की सेवा या शोचालय की सेवा दी जाती थी । अगर वह वहाँ टिक गया तो बाबाजी सोचते थे कि ये कुछ ग्रहण करने

जब तक हम
कर्मणा मनसा
वाचा से गुरु को
समर्पित नहीं हो
जाते तब तक हम
सिर्फ आडम्बर ही
करते रहेंगे ।

आया है । तितिक्षा जब तक नहीं होगी कुछ सम्भव भी नहीं है क्योंकि व्यक्ति सोचता है कि मैं तो यहाँ ध्यान सीखने, सत्संग करने आया हूँ ये कहाँ लगा दिया फिर वह विचलित हो जाता है और भागने लगता है इसलिए जरूरी है तितिक्षा । बस यही सोचना है कि हम कौन होते हैं कर्म करने वाले । जो कुछ भी है वह सब उस परमात्मा का है, गुरु का है । आगे श्लोक में आता है कि निर्लज्जो गुरु सन्निधौ- अर्थात् गुरु की शरण में कैसे रहना है तो कहते हैं कि सारी लज्जा को त्यागकर गुरु की शरण जाना चाहिए क्योंकि लज्जा होगी तो गुरु के द्वारा दिए गये कार्य का अनुसरण नहीं कर सकेंगे । बहुत लोग प्रश्न करते हैं कि ये कैसे पता चले कि गुरु ने हमें अपने आश्रय में ले लिया है या नहीं ? मन्त्र देते ही गुरु शिष्य को अपने आश्रय में ले लेता है । मन्त्र ही आश्रय बन जाता है क्योंकि वह मन्त्र

सिद्ध मन्त्र हो जाता है। यही कारण है कि मन्त्र गुरु से लिया जाता है नहीं तो मन्त्र कोई भी दे सकता है । मैं अपनी कहूँ तो जब से मुझे समझ है तब से ये श्लोक मेरे जीवन में कुछ उतरा है इसलिए ये श्लोक स्मरण आया । मैं समझता हूँ कि जब तक हम कर्मणा मनसा वाचा से गुरु को समर्पित नहीं हो जाते तब तक हम सिर्फ आडम्बर ही करते रहेंगे । हमने बाबाजी को फूल माला लाकर चढ़ा दी और सोचें कि बाबाजी मुझ से प्रसन्न हो गए तो ये एक दिखावा है जो कि हर कोई कर लेता है लेकिन अन्तर्मन से प्रभु का भजन कीर्तन करना ये अलग बात है । कोई-कोई तो दान भी देता है तो दिखा के दान पेटी में डालता है, ऐसा आडम्बर करने वाले लोग हैं हम । बहुत थोड़े समय में मनुष्य सब-कुछ बदल सकता है लेकिन अपने स्वभाव को नहीं बदल सकता और जिसका स्वभाव ही है

मनुष्य प्रभु से और कुछ नहीं लाता है भाग्य के अलावा और उसी के अनुसार जीता है जो विधाता लिख देता है । मनुष्य तो बस उसको सार्थक करता है ।

आडम्बर करना वह तो करेगा ही , स्वभाव बदलने में समय लगता है । हम सब स्वभाव बदलने ही तो गुरु के पास आते हैं क्योंकि हमारा स्वभाव होता है बाहरी चीजों से लगाव रखना लेकिन जब ये वस्तुएँ हम पर भारी पड़ जाती हैं तो हम गुरु के आश्रय में जाते हैं । ब्रह्मानन्द महाराज कहते थे कि बिगड़े हुए समय को सुधारना बहुत कठिन होता है, बहुत परिश्रम करने पर हमारा समय सुधरता है । परिश्रमशील व्यक्ति यह कार्य कर पाता है । हमारा सबसे बड़ा शत्रु है आलस्य, उसी के कारण हम परिश्रम करने में पीछे रह जाते हैं । हम चाहें तो क्या नहीं कर सकते ? उस आलस्य को रोकने के लिए ही कहा गया है कर्मणा मनसा वाचा नित्यमाराधयेद गुरुम्-जब हमारा मन प्रतिक्षण उस गुरु का चिन्तन करेगा, जो कुछ करता है गुरु के लिए करता है, जो भी विचार आता है वह गुरु से ही

सम्बन्धित होता है। तात्पर्य यह कि ऐसा कोई समय नहीं है जिस समय में मेरे मन में गुरु के लिए विचार न आता हो, ऐसा कुछ नहीं करता हूँ जो बाबा जी के लिए नहीं होता हो, सब कुछ गुरु के प्रति समर्पित है मेरा । हमारा बहुत बड़ा भाग्य है जब हम किसी गुरु का, किसी महापुरुष का सान्निध्य प्राप्त करते हैं । मनुष्य प्रभु से और कुछ नहीं लाता है भाग्य के अलावा और उसी के अनुसार जीता है जो विधाता लिख देता है, मनुष्य तो बस उसको सार्थक करता है । हम इस जगत में कोई फेर-बदल क्यों नहीं कर सकते कभी सोचा है ? इसका मुख्य तत्त्व क्या है इसके बारे में जिज्ञासा हुई है कभी? आखिर यह संसार चलता कैसे है इस पर विचार किया है ? जब ये सभी जिज्ञासाएँ तुम्हारे अन्दर स्फुटित होने लगेंगी तब कहीं जाकर तुम एक अच्छे साधक बनोगे । मनुष्य

जब समभाव की दृष्टि हमारे अन्दर आने लगती है तो प्रभु के सभी नियम हमें अनुकूल लगते हैं क्योंकि हम उसी के अनुसार जीने लगते हैं ।

कितना भी चाहे वह संसार के चलन को बदल नहीं सकता क्योंकि ये नियम स्वयं परमात्मा ने बनाए हैं और जो नियम परमात्मा ने बनाए उसमें कोई न कोई सूक्ष्मकारण छिपा रहता है जिसको जानने के लिए हमें उसकी आराधना करनी होती है, किसी सद्गुरु के पास जाकर सत्संग करने होते हैं । फिर हमें धीरे-धीरे समझ में आता है कि प्रभु ने जो भी इस प्रकृति में बनाया है वो सब उपयोगी है और एक दूसरे पर आश्रित है । जब समभाव की दृष्टि हमारे अन्दर आने लगती है तो प्रभु के सभी नियम हमें अनुकूल लगते हैं क्योंकि हम उसी के अनुसार जीने लगते हैं । प्रायः प्रकृति में सभी वस्तुएँ परोपकार के लिए हैं । कबीरदास जी कहते हैं- वृक्ष कबहुँ न फल भखैं, नदी न सिंचै नीर, परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर । अर्थात् वृक्ष अपने फल कभी नहीं खाते, नदी स्वयं का पानी

कभी नहीं पीती । कबीरदासजी यहाँ साधु की चर्चा करते हुए कहते हैं कि साधु का जो शरीर है वह सिर्फ परमार्थ के लिए ही है। धरा के दो अर्थ होते हैं, एक पृथ्वी और दूसरा धारण करना तो साधु इस पृथ्वी पर दूसरों के हित के लिए ही शरीर धारण करता है । उसका उसमें लेशमात्र भी प्रयोजन नहीं होता है और अपनी साधना में लीन रहता है । उसका तो पूरा जीवन प्रभु के लिए समर्पित होता है । वह माध्यम बन जाता है परमात्मा का इस संसार में धर्म की रक्षा हेतु जैसा कि गीता में भगवान ने कहा है - यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ अर्थात् जब जब धर्म की हानि होगी तब तब मैं जन्म लूँगा तो प्रभु का जो स्वरूप है वह इस संसार में साधु के वेश में विचरण कर रहा है जो कि धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध है । धर्मों

वास्तव में धर्म
वही है जिससे
अपना और दूसरों
का हित हो, लोक
में भी हित हो,
परलोक में भी हित
हो ।

रक्षति रक्षितः अर्थात् धर्म की रक्षा करने वाले की धर्म स्वयं रक्षा करता है । जिस मनुष्य की बुद्धि सूक्ष्म नहीं है, ज्ञान और वैराग्य भी नहीं है, ऐसे मनुष्य के लिए भगवान ने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य पालन करने की प्रेरणा दी । वास्तव में धर्म वही है जिससे अपना और दूसरों का हित हो, लोक में भी हित हो, परलोक में भी हित हो । धर्म का लक्षण अब्द्रुत है- यतोऽभ्युदिनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः अर्थात् जिससे अभ्युदय(लौकिक उत्थान) और निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति होती है वही धर्म है । जैसे कोई विद्यार्थी है उसका तत्परता से अध्ययन करना ही धर्म है और शिक्षक का तत्परता से अध्यापन कराना ही परम धर्म है । किसी साधक का साधना करना ही धर्म है । जो यहाँ पर अपने प्रारब्ध अनुसार स्थित है तदनुसार कर्त्तव्य की रक्षा करना ही उसका धर्म है । तब कहीं धर्म हमारी

रक्षा करेगा । धर्म तो अन्दर की यात्रा है । जब धर्म बहिर्मुख हो जाता है तो वह आडम्बर का रूप ले लेता है । आज धर्म की रक्षा न होने से धर्म से जो लाभ होने चाहिएँ वे नहीं हो रहे हैं, बल्कि धर्म समस्या का कारण बन गया है, ऐसा क्यों ? धर्म के वास्तविक स्वरूप की रक्षा हम नहीं कर पा रहे हैं । धर्म तो वह है जो आनन्द की अनुभूति करा दे, सत्य का दर्शन करा दे । मनुष्य ही है जो अपने धर्म की रक्षा कर सकता है । ईश्वर की सृष्टि स्वेदज, अण्डज, जरायुज इस प्रकार से है जिसमें मनुष्य को श्रेष्ठ बताया गया है । मनुष्य के पास विवेक, विचार करने की क्षमता है, क्या गलत है और क्या सही है ये भेद करने की समझ है । विचार किया जाए तो धर्म कहने का विषय नहीं है, करने का विषय है तभी तो अनुभव होगा कि धर्म का और अपना कर्त्तव्य कैसे निभाया जाए । हम

मन्त्र जप करो,
ध्यान करो, अपने
आप से बात
करो, ये सब
आध्यात्मिक
उन्नति करने में
तुम्हारी मदद करेंगे
और जीवन का
कल्याण करेंगे ।

कहते रहेंगे सब सुनते रहेंगे तो कुछ नहीं हो सकता इसलिए अपने विवेक को, अपनी बुद्धि को सच्चिन्तन में लगाओ जिससे हमारा उद्धार हो सके । हम चाहकर भी धर्म का उल्लंघन न कर सकें बल्कि उसके पालन के लिए प्रेरित करें, तब जाकर हम सिद्धमार्ग से जुड़ सकेंगे, अपना और दूसरों का कल्याण कर सकेंगे । कहीं न कहीं हम आलस्य कर देते हैं और वह आलस्य हमें अकर्तव्य की ओर ले जाता है । हम उसी में खोए हुए रहते हैं, सच्चाई क्या है ये जानने का प्रयास नहीं करते हैं । हम भेद- भाव में फँसकर रह जाते हैं, मनुष्यता को भूलकर आडम्बर की ओर चल देते हैं जिससे हम स्वयं का और अपने धर्म का, दोनों के पतन का कारण बन जाते हैं और नाना प्रकार के दुःखों को भोगते हैं । इसलिए हमारा शास्त्र कहता है कि जितना हो सके अपना समय गुरु के सान्निध्य में

बिताओ । सान्निध्य का तात्पर्य यह नहीं है कि हमेशा हम उनके शारीरिक सान्निध्य में हों ऐसा नहीं है, अपने हृदय में, अपने मन में, उनको स्थान देना है, सूक्ष्मता से उनसे जुड़े रहना है, यही है सान्निध्य का मतलब । हमें यही भाव रखना है कि गुरु हमसे अलग नहीं, वह प्रत्येक क्षण हमारे अन्दर सूक्ष्मरूप से विद्यमान है । सब कुछ उसको अर्पण करते हुए चलो यही जीवन का सार है । मन्त्र जप करो, ध्यान करो, अपने आप से बात करो ये सब आध्यात्मिक उन्नति करने में तुम्हारी मदद करेंगे और जीवन का कल्याण करेंगे । जीवन में कुछ सीखना है तो उत्थान करना सीखो, पतन करने से अवनति होती है और मनुष्य कहलाने के लायक नहीं रहते । उत्थान से जीवन को सुखपूर्वक जीने की कला आएगी । कला मनुष्य को जीवन जीना सिखाती है । कलात्मक ढंग से जीना ही

जीना माना गया है । बजाए कि हम अपने दुःख का पिटारा लेकर घूमें, बल्कि उसका तोड़ निकालें, क्योंकि वह दुःख तब तक ही दुःख है जब तक उसका निदान नहीं हो जाता । इसलिए समस्या का हल निकालते हुए जीएँ ।

बजाए कि हम
अपने दुःख का
पिटारा लेकर घूमें,
बल्कि उसका तोड़
निकालें

सद्गुरुनाथ महाराज की जय